शब्दब्रह्म: ई जर्नल **ISSN:**

भारतेन्दु के नाटकों में व्यंग्य कौशल

डॉ. कल्पना वी.भट्ट
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
सी. बी. पटेल आर्ट्स कोलिज,
नडियाद (गुजरात)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 के राजनीतिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल से भरे समय में हुआ। **"जिस समय भारतीय समाज राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के मोड़ से गुज़र रहा था, उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसकी ऊर्ध्वमुखी शक्ति को पहचाना और उसे विकासमान बनाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। रूढ़ियों को प्रबल झटका देकर युगानुकूल मानों की जो अचूक परख उनको प्राप्त थी, उसकी अभिव्यक्ति उनके नाटकों में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। पारसी रंगमंच की ह्रासोन्मुख कुत्सित प्रवृत्तियों के विरोध में भारतेन्दु ने नए नाटकों की सृष्टि और नवीन रंगमंच की स्थापना की।"१**

भारतेंदु युग के नाटकों में तत्कालीन जीवन का यथार्थ दृष्टिगत होता है। इस युग के नाटककारों ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। मुख्य रूप से पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक आधारों पर बँटे नाटकों का मुख्य लक्ष्य तत्कालीन समाज में सुधारवादी चेतना का विकास करना था। इस क्रम में इस काल के नाटकों ने जहाँ पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना के द्वारा साहस, शौर्य, त्याग, बलिदान जैसे उदात्त मूल्यों का संचार हुआ, वहीं सामाजिक नाटकों द्वारा बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा का निषेध तथा विधवा-विवाह और स्त्री-

शिक्षा के समर्थन का स्वर अभिव्यक्त हुआ है। इस युग के सर्वाधिक प्रभावशाली नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। उन्होंने मौलिक और अनूदित मिलाकर सतरह नाटकों की रचना की। भारतेंदु के नाटक औपनिवेशिक भारतीय समाज को समझने की दृष्टि से अधिक कारगर हैं जिसमें उन्होंने अंग्रेजी व्यवस्था की आलोचना तो की ही है, साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त भेदभाव के विभिन्न कारकों की भी आलोचना की है। वे धर्म, जाति, अमीरी-ग़रीबी के आधार पर किये जा रहे भेदभाव को, जिससे लोग आपस में बंटे हैं, एकजुटता नहीं बन पा रही, जिसके कारण विदेशी ताकतें उनपर अपना आधिपत्य जमाती जा रही हैं।

'अंधेर नगरी' (सन् 1881) उनका प्रमुख नाटक है जिसके माध्यम से वह यह सन्देश देना चाहते हैं कि कैसे सत्ता में मधांद व्यक्ति अपने अविवेकपूर्ण फैसले का शिकार स्वयं हो जाता है। इस नाटक की शैली व्यंग्य प्रधान है और यह व्यंग्य सीधे जनता के हृदय को छूता है। भारतेन्दु ने जिस व्यंग्य शैली को अपने नाटकों में अपनाया उसका विकास बाद के हिन्दी नाटकों में और अधिक हुआ। 'अन्धेर नगरी' बन्ध व्यवस्था का प्रतीक है। चौपट राजा विवेकहीनता और न्यायदृष्टि के न होने का मूर्त स्वरूप है। उसका न्याय भी अन्धता का प्रमाण है क्योंकि बकरी की मृत्यु का दण्ड देने के लिए गोवर्धन पकड़ लिया गया, अर्थात् कोई भी दण्डित हो सकता है। अविवेकी, प्रमादी, मूल्यहीन राजा की परिणति तो भारतेन्दु ने दिखायी ही है, लेकिन साथ ही उन्होंने गोवर्धन के द्वारा मनुष्य की लोभवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। लोभवृत्ति ही मनुष्य को 'अन्धेर नगरी' की अन्धव्यवस्था, अमानवीयता में फँसाती है। अंग्रेजों की न्याय-दृष्टि और प्रणाली में भी शोषक-शोषित, अपराधी-निरपराधी में कोई अन्तर नहीं था, आज भी हमारी

न्याय प्रणाली की यही स्थिति है। हमारी समकालीन शासन व्यवस्था पर शोषकवृत्ति पर तो, 'अन्धेर नगरी' व्यंग्य ही है पर यह अन्धेर नगरी विश्व के किसी भी कोने में हो सकती है, क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ आधुनिक युग की देन हैं।' **"अंग्रेज़ी राज पर तात्कालिक रूप में और शासन सत्ता की प्रकृति पर शाश्वत रूप में यह सरस शैली में लिखा गया उतना ही तीखा व्यंग्य है।"२** इस नाटक के पांचवे दृश्य में यह पंक्तियाँ इस नगरी की शासन व्यवस्था के प्रति व्यंग्य है –

" **अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टके सेर भाजी टका सेर खाजा ॥**

नीच ऊँच सब एकहि ऐसे। जैसे भडुए पंडित तैसे ॥"

सब्जी-फल बेचने वाली कूजड़ीन के माध्यम से तत्कालीन सत्ता के प्रतीक सेठ-साहूकारों पर व्यंग्य किया है। वह लिखते हैं-

"चूरन अमले सब जो खावै।
दूनी रिश्वत तुरत पचावै॥
चूरन नाटक वाले खाते।
इसकी नकल पचाकर लाते॥
चूरन सभी महाजन खाते।
जिससे जमा हजम कर जाते॥

भारतेन्दु द्वारा रचित 'पाखण्ड विडम्बना' (1873 ई.), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873 ई.), 'प्रेम जोगिनी' (1875 ई.), 'विषस्य विषमौषधम' (1876 ई.), 'भारत दुर्दशा' (1876 ई.), 'भारत जननी' (1877 ई.) प्रमुख रूप से व्यंग्य नाटक हैं। इसमें वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम तथा अंधेर नगरी प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। '**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति**' में भारतेन्दु ने वैदिक धर्म के नाम पर हिंसा करने

वाले मांसाहारियों, शराबियों (मद्यपान) और व्यभिचारियों पर करारा व्यंग्य किया है। '**विषस्य विषमौषधम**' नाटक में देशी राजाओं के कुप्रबंध, भारतीय राजाओं के चारित्रिक पतन तथा उनके संबंध में ब्रिटिश सरकार की नीतियों का पर्दाफाश किया गया है। वस्तुतः भारतेन्दु अपने आपको नवजागरण की चेतना से जोड़ते है तथा अपने समय की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हैं। भारतेन्दु के इस महत्त्व को मूल्यांकित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, **"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह युगान्तकारी महत्त्व है कि उन्होंने अपने प्रदेश की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पहचाना।"३**

'भारत दुर्दशा' में उन्होंने बाल विवाह और बहुविवाह से होने वाली कुप्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। समाज में प्रचलित जन्मपत्री के आधार पर कर्म करने वालों की कटु आलोचना की है-

"जन्मपत्र विधि मिले व्याह नाहिं होन देत अब।
बालकपन में व्याहि प्रीति बल नाश कियो सब॥
करिकुलीन के बहुत व्याह बल बीरज मार्यो।
विधवा विवाह निषेध कियो व्यभिचार प्रचार्यो।"४

ब्रिटिश प्रशासन के द्वारा भारत के शोषण के संदर्भ में भारतेन्दु ने सरकार की कटु आलोचना की है। ब्रिटिश सरकार की इन शोषक नीतियों को भारतेन्दु ने व्यंग्यात्मक रूप में पर्दाफाश किया है। 'भारत दुर्दशा' के प्रथम अंक में एक योगी गाता है –

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पय धन विदेश चलि जात यहे अति ख्वारी॥
ताहू पे महँगी काल रोग बिस्तारी
दिन दिन दूनो दुःख ईश देत हा हा री।

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"

भारतेन्दु ने देशी राजाओं पर भी व्यंग्य किया है। ब्रिटिश सरकार के शासन में आकर देशी राजाओं को वीरता ठण्डी पड़ गई। शक्ति और साहस के अभाव में वे पूरी तरह से सरकार की कठपुतली बन गए थे। भारतेन्दु ने उनकी चाटुकार स्थिति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है- "कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा है, तो उन्होंने उत्तर दिया, जैसे शतरंज के राजा, जहाँ चलाइए वहाँ चलें।"

धार्मिक पाखण्ड का यह कथ्य "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में भी मिलता है। ब्राह्मण लोगों के माँस खाने की प्रवृत्ति और उनके द्वारा धार्मिक 'प्रोपेगेंडा' खड़ा करने के सवाल पर- **"हे ब्राह्मण लोगों ! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करें और उसकी पूँछ मुख में न अटके हे पुरोहित, नित्य देवी के सामने पशु मराया करो और प्रसाद स्वाया करो।"५**

भारतेन्दु ने समाज के आधे भाग के सवाल नारी प्रश्न पर सहृदयता से विचार किया। उन्होंने पाठकों के सामने नारी जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। भारतेन्दु ने 'प्रेमजोगिनी' नाटिका में काशी के धार्मिक ब्राह्मण, पण्डा, पुरोहित आदि की छिछली धार्मिक कुप्रवृत्तियों का रेखांकन किया है। धर्म की आह में इन लोगों का मुख्य धन्धा परदेशियों को ठगना, स्त्रियों को फंसाकर वासना पूर्ति करना होता है। आगे चलकर फनीश्वरनाथ 'रेणु' के मैला आँचल में इस तरह की चीजें और स्पष्ट हो जाती हैं। कैसे धर्म के नाम पर अधर्म, शोषण और व्यभिचार मठों के महंत, साधू करते हैं, इसे हम देखते हैं। पिछले वर्षों में हुई विभिन्न घटनाओं ने इस पर से पर्दा उठा दिया है।

भारतेंदु ने व्यंग्य कौशल के द्वारा केवल तत्कालीन राजनैतिक ही नही अपितु सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था पर कटू प्रहार किया है | इसीसे गिरीश रस्तोगी का कहना सार्थक सिद्ध होता है- **"कबीर की तरह युग प्रवर्तक, फक्कड़, क्रान्तिकारी और सजग आलोचक, प्रेमचन्द की तरह यथार्थ को चित्रित करने वाले और निराला की तरह विराट जीवन्त प्रखर और निर्भीक एवं ओजपूर्ण व्यक्तित्व- सम्पन्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के प्रथम मौलिक नाटककार ही नहीं, वह आज की समकालीन विशेषज्ञों के लिए चुनौती बने हुए हैं और उनकी प्रासंगिकता निर्विवाद है।"६**

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१ हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ.23

२ हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.85-86

३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गन्धावली भाग- 1 (अंधेर नगरी), संपादक ओमप्रकाश सिंह, पृ. सं.290

४ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गन्धावली भाग- 1(भारत दुर्दशा), पृ. सं. 119

५ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गन्धावली भाग- 1 (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति}, पृ. सं. 57

६ हिंदी नाटक और रंगमंच नयी दिशाएँ, नये प्रश्न गिरीश रस्तोगी, पृ. सं. 12.